षोडश

संस्कार

मानव जीवन में विभिन्न संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है। गर्भधारण से मरणपर्यंत तक सोलह संस्कारों का विधान शास्त्रों में वर्णित है और सभी संस्कार अथवा उनके अनुष्ठान मानव जीवन के लिए परम आवश्यक बताए जाते हैं। इन संस्कारों का संबंध सिर्फ धर्म शास्त्र से ही नहीं है। अपितु आयुर्वेद के साथ भी है। जिस प्रकार आयुर्वेद का संबंध मानव शरीर और उसकी इंद्रियों से रहता है इसी प्रकार संस्कार भी शरीर और इंद्रियों को दोष रहित करते हैं। जिस प्रकार संस्कारों का प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति करना होता है, उसी प्रकार आयुर्वेद भी इसी उद्देश्य को हासिल करता है।

संस्कार अव्यक्त रूप में प्राणी में वर्तमान रहते हैं। इनकी शक्ति प्रबल होती है। ये प्राणी में अनजाने ही उसके चेतन और अचेतन व्यवहार को प्रभावित करते रहते हैं। अनुकूल अवसर के मिलते ही उपयुक्त उद्बोधक हेतुओं (Appropriate Stimulus) का सहयोग पाकर ये सूक्ष्म संस्कार पुनः स्थूल वृत्तियों का रूप धारण कर लेते हैं और प्राणी के व्यवहार में व्यक्त होने लगते हैं। संस्कार ही व्यवहार के नियंत्रक एवं आचरण के निर्माता होते हैं। इसलिए हिन्दू–संस्कृति में संस्कारों के सुधरने की ओर अत्याधिक ध्यान दिया गया है।

संस्कार पूर्वजन्म के भी हो सकते हैं और इस जन्म के भी। पूर्वजन्म के संस्कारों को पूर्वजन्म का संस्कार या संचित कहा जाता है। आयुर्वेद में पूर्वजन्म के संस्कारों को दैव और इस जन्म के संस्कारों को पुरुषकार की संज्ञा दी गई है। मानव–जाति के एक सदस्य के रूप में मनुष्य युग–युग से जिन संस्कारों को अर्जित कर चला आ रहा है, उन्हें मानव–जातीय–संस्कार कहते हैं। ये वंशानुक्रम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते जाते हैं।

क्रिया के रूप में संस्कार का अर्थ सुधारना, संवारना, परिष्कर करना, पवित्र करना, शरीर और मन की सफाई करना, स्वभाव का शोधन करना, मानसिक शिक्षण आदि। अन्य चीजों के समान मनुष्य अपने जीवन को भी सुधारता संवारता है। उसका शोधन करता है। जीवन–शोधन की यह प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक बराबर चलती रहती है। यह व्यक्ति और वातावरण के घात–प्रतिघातस्वरूप विकसित होती है। इसमें व्यक्ति का भी योगदान होता है और समाज का भी। आरंभिक अवस्था में यह कार्य उसके पालन–पोषण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति ही करते हैं। जैसे–जैसे वह समर्थ होता जाता है वह धीरे–धीरे स्वयं आत्मनिर्भर होने लगता है।

मनुष्य की संपूर्ण जीवनावधि (Life-Span) सौ वर्ष और कहीं–कहीं एक–सौ–बीस वर्ष की मानी गयी है। अपनी इस संम्पूर्ण जीवनावधि में गर्भावक्रान्ति से मृत्युपर्यन्त वह वृद्धि व विकास के अनेक स्तरों से गुजरता है–गर्भ में आता है, जन्म लेता है नवजात से शिशु, शिशु से कुमार, कुमार से किशोर, किशोर से तरूण, तरूण से प्रौढ़, प्रौढ़ से वृद्ध और वृद्ध से

जरा–जीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है। जीवन का हर परिवर्तन उसके सामने नये रूप में आता है। वह अभियोजन संबंधी नयी समस्याओं को खड़ा करता है। उसे उनका सामना करने के लिए नये सिर से तैयार होना पड़ता है। अपने को नये ढंग से ढालना होता है।

हिन्दू–संस्कृति में सम्पूर्ण जीवनावधि को चार आश्रमों में बांटा गया है– ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इनमें से प्रत्येक का विस्तार पच्चीस वर्ष का है। इनमें से प्रत्येक अवस्था में उसे अनेक महत्वपूर्ण स्तरों से गुजरना पड़ता है। अनेक परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है।

हिन्दू–संस्कृति में जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण परिवर्तन को समारोहपूर्वक एक धार्मिक कृत्य के रूप में मनाया जाता है। इन्हें संस्कार की संज्ञा दी गई है। ये संस्कार उसे स्मरण दिलाते हैं कि वह जीवन के एक महत्वपूर्ण स्तर को सफलतापूर्वक पार कर दूसरे में प्रवेश कर रहा है। जीवन के अगले स्तर में समाज को उससे क्या अपेक्षाएं हैं। उन्हें किस प्रकार पूरा करना है। अपने कर्तव्यों का किस प्रकार निर्वाह करना है। जीवन में संपन्न किया जाने वाला प्रत्येक संस्कार एक मील का पत्थर है, जहां उसे रोककर उसके कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराया जाता है। अगले स्तर को भी उसी सफलता के साथ पार कर सके, इसके लिए भगवान से प्रार्थना की जाती है।

संस्कारों की संख्या

संस्कारों की संख्या के संबंध में मतभेद है। गृह्मसूत्र, धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में इनकी संख्या 13 से लेकर 40 तक बतलायी गयी है। इनमें से 16 प्रमुख हैं। महर्षि दयानन्द ने 'संस्कार–विधि' में इनका विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। नीचे संक्षेप में इनका परिचय प्रस्तुत है–

1.गर्भाधान-संस्कार - जब विवाह–बन्धन में बंधा परिपक्व आयु का स्वस्थ पुरूष (आयुर्वेद की दृष्टि से कम से कम 25 वर्ष) शुभ दिन, शुभ वार, शुभ नक्षत्र में एवं शुभ मुहुर्त में अपनी परिपक्व

आयु की स्वस्थ पत्नी (कम से कम सोलह वर्ष) के पास प्रसन्न मन से, सन्तानोपादन के लिए जाता है, उसे गर्भाधान–संस्कार कहते हैं। इसमें पुरूष का वीर्य (पुंबीज) और स्त्री के आर्तव (स्त्राबीज) का शुद्ध होना एक आवश्यक शर्त है।

2.पुंसवन-संस्कार - गर्भ की स्थिति का निश्चय हो जाने पर दूसरे या तीसरे माह पुत्र–प्राप्ति की इच्छा से यह संस्कार किया जाता है। इस अवसर पर पति और पत्नी दोनों इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से वे कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे गर्भ को क्षति पहुंचे और अकाल में ही उसका प्रसव हो जाय। इसी समय से गर्भवती के लिए गर्भ के विकास में सहायक आहार–विहार की विशेष व्यवस्था की जाती है।

3.सीमंतोन्नयन-संस्कार - यह संस्कार गर्भस्थापन के बाद चौथे महीने के (कभी–कभी छठे या आठवें में भी) शुक्ल पक्ष में जिस दिन नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो, उसी दिन किया जाता है। यह संस्कार बालक की बौद्धिक शक्तियों की वृद्धि की कामना के लिए किया जाता है। इसमें ऐसे साधनों की व्यवस्था की जाती है जिससे गर्भिणी का मन प्रसवकाल तक हर तरह से प्रसन्न रहें।

4.जातकर्म संस्कार - संतान के उत्पन्न होने पर जीवित एवं स्वस्थ रखने के लिए उस समय जो भी आवश्यक कर्म किए जाते हैं, उन्हें जातकर्म –संस्कार कहते हैं।

5.नामकरण संस्कार - जन्म के प्रायः ग्यारहवें (101 वें या दूसरे वर्ष के आरंभ में भी) दिन यह संस्कार किया जाता है। इसमें बालक को एक नाम दिया जाता है जिससे आगे चलकर वह संस्कार में जाना जाता है। आज से उसके रूप के साथ यह भी नाम जुड़ जाता है।

6.निष्क्रमण-संस्कार - यह संस्कार चौथे महीने में, जिस तिथि को बालक उत्पन्न हुआ, उसी तिथि को किया जाता है। इस अवसर पर बालक को पहली बार घर से बाहर देवस्थान तक ले जाता है। बाह्य सृष्टि से उसका यह प्रथम परिचय होता है।

7. अन्नप्राशन संस्कार - जन्म के प्रायः छठे या आठवें महीने में बालक को पहली बार अन्न चटाया जाता है। इसे अन्न प्राशन संस्कार कहते हैं। अब वह तरल पदार्थ के साथ–साथ अन्न का भी ग्रहण करने लगता है।

8. चूड़ाकर्म या मुण्डन-संस्कार - जन्म के तीसरे या पांचवे वर्ष में यह संस्कार संपन्न किया जाता है। इस अवसर पर बालक के सिर के जन्म के बाल पहली बार काटे जाते हैं।

9. कर्णवेध-संस्कार - जन्म से तीसरे या पांचवे वर्ष में बालक की कर्ण–पाली का छेदन किया जाता है। इसी को कर्णछेदन या कर्णभेद–संस्कार भी कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कर्णपाली का छीदन कर देने से बालक कुछ विशेष रोगों से बचा रहता है।

10. उपनयन-संस्कार - उपनय का अर्थ है पास ले जाना। इस संस्कार के साथ बालक आध्यात्मिक जीवन में प्रथम प्रवेश होता है। इसे दूसरा जन्म माना जाता है।

11. वेदारंभ संस्कार - उपनयन के ही दिन या उसके एक वर्ष के भीतर बालक गुरूकुल में गुरू के निकट रहकर विद्याध्ययन आरंभ करता है। इसी को वेदारम्भ–संस्कार कहते हैं। वेद समस्त ज्ञान–विज्ञान का स्रोत है।

12. समावर्तन-संस्कार - पच्चीस वर्ष की वय तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरूकुल में रहकर विद्याध्ययन का कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त गुरू का आशीर्वाद लेकर शिष्य अपने घर आकर गृहस्थ–आश्रम में प्रवेश करता है।

13. विवाह-संस्कार - यह संस्कार गृहस्थ –आश्रम में प्रवेश का प्रथम सोपान है। इसके द्वारा एक स्वस्थ एवं परिपक्व स्त्री के साथ प्रजोत्पादन के लिए प्रणय–सूत्र में आबद्ध होता है।

14. वानप्रस्थ-संस्कार - पच्चीस से पचास वर्ष की वय तक गृहस्थ–आश्रम का सफल जीवन व्यतीत करने के उपरांत जब उसकी भी संतान विद्याध्ययन कर घर आ जाती है और उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है, तब अपने पुत्र और

पुत्र–वधु को घर का सारा दायित्व सौंपकर वह सपत्नीक पारिवारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। इसके साथ ही वह अपने ही सीमित परिवार के छोटे दायरे को छोड़कर एक बड़े दायरे में आ जाता है और अपना शेष जीवन अध्यात्म–चिंतन और समाज की सेवा में व्यतीत करता है। वानप्रस्थ–संस्कार के साथ ही वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है।

15. सन्यास-संस्कार - पचास से पचहत्तर वर्ष की वय तक वानपस्थ आश्रम का जीवन व्यतीत करते हुए निरंतर अभ्यास द्वारा समस्त मोह माया का त्याग कर व्यक्ति पूर्णरूपेण आध्यात्मिक साधन में लग जाता है। अब उसका एकमात्र उद्देश्य होता है ज्ञान एवं भक्ति के प्रकाश में मोक्ष की प्राप्ति, सत्, चित् और आनंदस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति तथा अंतिम रूप में उसी के साथ एकाकार हो जाना।

16. अंत्येष्टि संस्कार - यह मरणोपरान्त किया जाता है। इसी को दाह–संस्कार भी कहते हैं। यह प्राणी के पार्थिव शरीर के अन्त का प्रतीक होता है। इसी के साथ उसकी आत्मा को नया जीवन प्राप्त होता है।

उपर्युक्त संस्कारों में गर्भाधान मानव के भौतिक जीवन के आदि और अंत्येष्टि उसके अंत का द्योतक है। शेष संस्कार जीवन में आने वाले अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य के जन्म के पश्चात से किशोरावस्था तक अर्थात् बाल्यावस्था में कुल छह संस्कार – जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म व कर्णवेध संस्कार का विधान शास्त्रों द्वारा माना गया है।

डॉ. अंजू ममतानी
'जीकुमार आरोग्यधाम',
नारा रोड, जरीपटका, नागपुर – 14
फोन : (0712) 2646600, 2634415
www.mamtaniayurveda.com
facebook.com/mamtaniayurveda